कारोबार

ओमा शर्मा

कहानी

कारोबार

ओमा शर्मा

कारोबार

दरवाजे को हौले-से भेड़कर वह अंदर आया और इशारा पाते ही कुर्सी पर बैठ गया। चालू फाइल को एहतियातन वहीं बंद कर मैंने नीचे सरका दिया। इस दरम्यान एक मिनट की खामोशी रही। एक अबूझ-सी राहत समेटकर मैं कुर्सी के पिछवाड़े पर झूल गया और आश्वस्ति टटोलती निगाह से उसके हाव-भाव परखने लगा।

'तो तुम्हारे हिसाब से केस हिट करने लायक है?'

'एकदम साब, सोचने जैसा कुछ है ही नहीं।'

आँखों में आँखें डालकर उसने यकीन से गर्दन हिलाई और कहते हुए हल्की-सी चपत टेबल के काँच पर जड़ दी।

इस काम में जिसे 'गट फीलिंग' कहते हैं, वह मुझे आ चुकी थी मगर एक परीक्षार्थी का-सा अंदरूनी डर फिर भी बना हुआ था। मैं उसी पर नकेल डालने की जुगत में था, 'अच्छा, कितने की जब्ती हो जाएगी?'

बेहिसाबी रोकड़ा और दूसरी चल संपत्तियों की जब्ती पूरे मिशन की कामयाबी की जान थी इसलिए मैं उसी पर चढ़कर मॉक-फेंसिंग आजमा रहा था। झूठ-फरेब करने में कोई कितना ही उस्ताद बन ले मगर हर पेशेवर मुखबिर इस सवाल का जवाब देने से कतराता है क्योंकि इससे उसकी रोजी-रोटी ही नहीं, साख-प्रतिष्ठा भी जुड़ी होती है। सीधे-सीधे। एवजी में कोई दलील काम नहीं करती है। इसलिए निमिष भर को वह झिझका। एक अलिखित कायदे के मुताबिक रत्ती-भर से ज्यादा की झिझक मेहनत से बनाए आपके ढाँचे को भुरभुरा कर सकती है - शक की वजह से। इसलिए भटकती पुतलियों को दबोचकर उसने लंबी साँस खींची।

'करोड़ से कम नहीं होगी।'

'तुम्हारा दिमाग ठीक है... करोड़ से ऊपर तो हमारे यहाँ सारे ही केस होते हैं, सवाल है, कितने करोड़?' मैंने उसे खारिज-सा करते हुए धमकाया।

'दो-ढाई तो समझो होई जाएगी, नसीब ने साथ दिया तो चार-पाँच भी हो सकती है।' उसने गोकि बिखरे पत्ते समेटे।

'हम नसीब पर कुछ नहीं छोड़ते पठान भाई... इतनी बड़ी दुनिया में इतने बड़े-बड़े मुर्गे खुले घूम रहे हैं... किसे पकड़ना है यह नसीब नहीं, नजर और समझ की बिना पर तय होना चाहिए...'

'फिर भी साब, नसीब तो समझो होना ही हुआ।' उसने मेरी बात बीच में पकड़ ली। उसकी बातों में 'समझो' तकियाकलाम की तरह रहता है।

'ठीक है ठीक है, तुम नसीब की नहीं काम की बात पर आओ।'

'वो तो साब मैंने पैलेई बतला दी है।'

पहले उसने जो बतलाया था... वह अपनी नवीनता के कारण काफी कौतूहल भरा लगा था। हर दूसरे-तीसरे छापे में बिल्डरों और ज्वैलर्स की धर-पकड़ करते हुए मैं खासा ऊब गया था। हमारा निदेशक बार-बार दुहाई देता कि गए दस बरसों में दुनिया के कारोबार का नक्शा बदल गया है मगर हम अपनी आरामपरस्ती में फँसे पड़े हैं। चार लोगों की हमारी टीम ने डेढ़-सौ से ज्यादा कारोबारों की छँटनी की थी मगर याद नहीं पड़ता कि 'फलों का थोक व्यापार' उसमें था या नहीं।

उसने जब सुझाया तो पहली प्रतिक्रिया में खारिज करते हुए मैंने तल्खी ली थी कि विभाग के इतने बुरे दिन भी नहीं आए हैं कि धनिए-पुदीने वालों पर भी छापा मारें।

'धनिया-पुदीना और सेब-संतरों में फर्क है साब।'

'क्या फर्क है भाई?'

'पचास लाख की आबादी के इस शहर में हर रोज ढाई-तीन लाख का धनिया बिकता है और तीस-पैंतीस लाख के फल... फिर फ्रूट्स खानेवाला तबका कौन-सा है ये तो आप बखूबी जानते हैं।'

मैं अचानक रुका। उसकी दलील में आँकड़े नहीं, मानवीय व्यवहार की गहरी समझ थी। एक चौखटे में फँसी सोच के तहत मैं मन-ही-मन मोटा-मोटी हिसाब लगाने लगा कि हर रोज के तीस लाख के बाजार में आठ लाख का हिस्सा रखनेवाले एक थोक व्यापारी की साल भर में कितनी कमाई होती होगी... पच्चीस करोड़ की सालाना बिक्री के हिसाब से छह साल की हो गई सौ करोड़ से ऊपर। जिस ट्रेड को आज तक हाथ नहीं लगाया गया उसका तो सारा कारोबार ही बेहिसाबी होगा। उसने आगे बताया कि आम को लोग भले उसके स्वाद के कारण फलों का बादशाह कहते हों मगर व्यापारियों को यह मुनाफे की वजह से बादशाह लगता है। हर सीजन की शुरुआत केरल के सिंदूरी आमों से होती है, फिर रत्नागिरी और जूनागढ़ के अल्फांसो और हापुस आते हैं, आखिर में सोने पर सुगंध उत्तर-भारत के दशहरी और लँगड़ा की होती है। सारा ट्रेड कमीशन के आधार पर चलता है जिसकी तयशुदा दर छह प्रतिशत है... मगर यह तो सिक्के का दिखावटी पहलू है : बड़े-बड़े थोक व्यापारी किसानों के आम नहीं, बाग के बाग खरीद लेते हैं... कभी-कभी तो अगले 5-7 सालों के लिए। अपने उत्पाद की कीमत तय किए जाने में किसान के साथ जो छल किया जाता है उसकी नजीर भी उसने मुझे दिखा दी थी। यह देखकर मैं हक्का-बक्का रह गया कि एक तौलिए के भीतर हाथ की उँगलियाँ घुमाकर व्यापारियों की कार्टल 'प्रतियोगिता' के सिद्धांत की कैसे धज्जियाँ उड़ाती चली जाती है।

मैं वापस उसकी तरफ लौटा।

'कितने पार्टनर हैं?'

'तीन हैं, तीनों भाई।'

'ठिकाने कितने रहेंगे?'

'समझो तीन हो गए बँगले, एक बाप का, एक मार्किट-ऑफिस, एक गोदाम।'

'यानी छह।'

'सात समझो, साला भी है एक, बड़े वाले का। मामू कहते हैं।'

'बाप एक्टिव है?'

'एक्टिव तो नहीं है मगर इन तीनों को पैदा करने का कसूरवार तो है ही...।'

काम की बात के बीच थोड़ी चुटकी मुझे सुहाती है। वह जानता है।

'कसूरवार है तो इस बुढ़ापे में बँगलों को छोड़कर उस फ्लैट में क्या कर रहा है?'

'इन सिंधियों का घर या शक्ल देखकर आप इनकी हैसियत के बारे में अंदाजा नहीं लगा सकते हैं... ये जो दिखते हैं उसके अलावा कुछ भी हो सकते हैं।' अपनी बात मनवाने के लिए पठान अक्सर ऐसे शगूफे छोड़ने लगता। लगभग यही बात उसने एक मारवाड़ी के संदर्भ में कही थी। आप बहस कीजिए और मुद्दे से हाथ धो बैठिए।

अपने निदेशक को विश्वास में लेकर चौथे दिन मैंने उस निशाने को 'साध' लिया था। बस दो एहतियात अपनी तरफ से और बरते, एक तो इस खिलाड़ी न.2 के साथ इस बाजार के खिलाड़ी नं.2 को भी उसी दिन शिकार बनाया और दूसरे, दोनों के बही-खाते लिखनेवाले मुनीमों को भी वही इज्जत बख्शी जो उनके आकाओं को। दोनों घरानों से कोई पौने चार करोड़ की जब्ती हुई थी जो अपेक्षा से कहीं कम थी मगर दूसरे घराने के एक भागीदार के यहाँ से मिली कुल जमा इक्यावन लाख की नकदी ने किसी तात्कालिक मलाल से बरी कर दिया था। निर्वासित पिता और मामू को 'कवर' करने